टी० एस० इलियट के काव्य-सिद्धान्त

१. भूमिका
२ क्लासिकवाद से इलियट का तात्पर्य
३. कला-निर्वैयक्तिकता
४ कविता के तीन स्वर
५. वस्तुनिष्ठ समीकरण का सिद्धान्त
६. काव्य-भाषा
७. समीक्षा और समीक्षक
८. साहित्य का मूल्य

भूमिका

साहित्य और दर्शन के गहन अध्येता, कवि और सुप्रसिद्ध समीक्षक टी० एस० इलियट का जन्म २६ सितम्बर १८८८ ई० में सेंटलुई, मिसौरी में हुआ था। वह बीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रभावशाली समीक्षक माने जाते हैं। परन्तु उन के कवि, कविता, साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी मत महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ अत्यन्त विवादास्पद भी हैं। फिर भी यह माना जाता है कि इन्होंने समीक्षा क्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति उपस्थित की है।

क्लासिकवाद से इलियट का तात्पर्य

इलियट ने अपने को क्लासिकवादी कहा है, अतः यह जानना आवश्यक है कि क्लासिकवादी से उनका क्या तात्पर्य है ? उनके अनुसार 'क्लासिक' का अर्थ है परिपक्वता या प्रौढ़ता (maturity) और क्लासिक साहित्य की सृष्टि तभी हो सकती है जब सभ्यता, भाषा और साहित्य प्रौढ़ हो और स्वयं कृतिकार का मस्तिष्क भी प्रौढ़ हो। इन तीन गुणों को उन्होंने maturity of mind, maturity of manners तथा maturity of language कहा है।

मस्तिष्क की प्रौढ़ता के लिए वह इतिहास और ऐतिहासिक चेतना को आवश्यक मानते हैं। इसके लिए उनके अनुसार कवि को अपने देश और जाति के अध्ययन के अतिरिक्त दूसरी सभ्य जातियों का इतिहास पढ़ना चाहिए; उस सभ्यता का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जिसने हमारी सभ्यता को प्रभावित किया है। सारांश यह है कि कवि को अतीत की पूरी जानकारी होनी चाहिए। वर्जिल इसीलिए

Scanned by TapScanner

क्लासिक कवि का आदर्श है, क्योंकि उसने यूनानी सभ्यता के लैटिन पर पड़े प्रभाव को ठींक से हृदयंगम कर लिया था और उसके आलोक में अपने साहित्य का नवीन विकास किया था। शील की प्रौढ़ता से उनका अभिप्राय था आदर्श चरित्र का निर्माण। भाषा की पूर्ण प्रौढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि पूर्व युग में महान कवि तो हो चुके हों, किन्तु उनकी कृतियों में भाषा पराकाष्ठा तक विकसित न हुई हो। भाषा का पराकाष्ठागत विकास तो क्लासिक कवि द्वारा ही उस समय होता है जब मनुष्य में अतीत का बोध, वर्तमान का विश्वास और भविष्य की कोई सजग शंका न हो।

इलियट के अनुसार महान कवि क्लासिक हो ही, यह आवश्यक नहीं। उनके अनुसार दोनों में अन्तर है। अँग्रेजी में महान कवि कई हो चुके हैं, किन्तु इलियट उन्हें क्लासिक नहीं मानता। महान कवि केवल एक विधा (form) में पराकाष्ठा तक पहुँच कर सदा के लिए उसकी संभावना का समाप्त कर देता है, जबकि क्लासिक कवि एक विधा (form) को ही नहीं, अपने समय की भाषा को भी पराकाष्ठा पर पहुंचा कर उसकी संभावना को समाप्त कर देता है। इलियट ने इस संबन्ध में यह भी लिखा है "पूर्ण क्लासिक कृति वह है जिसमें किसी मानव-समाज की संपूर्ण शक्ति निहित हो।" अतः उनके अनुसार क्लासिक के लिए व्यापक एवं विश्वजनीन होना भी आवश्यक है। सारांश यह है कि इलियट के अनुसार मस्तिष्क की प्रौढ़ता, शील-प्रौढ़ता, भाषा-प्रौढ़ता शैली की पूर्णता और विश्वजनीनता (universality) क्लासिक के अनिवार्य गुण हैं, उसके लिए किसी भी प्रकार की संकीर्णता और सीमित धार्मिक चेतना अग्राह्य है। क्लासिक के सम्बन्ध में दिए गए इलियट के अधिकाँश मत तो हमें मान्य हैं परन्तु दो एक वक्तव्य ज्यों के त्यों स्वीकार नहीं किये जा सकते। उदाहरण के लिए एक स्थल पर वह लिखते हैं "यदि क्लासिक वास्तविक आदर्श है, तो उसे ईसाई धर्म की उच्चाशयता (catholicity) की अभिव्यक्ति करनी होगी।" यदि यहाँ उनका अभिप्राय (catholicity) से ईसाई धर्म विषयक कैथोलिक मान्यता से है, तो हमें उनका मत अग्राह्य होगा, क्योंकि विश्व में अन्य महान् धर्म भी हैं। इन दृष्टियों से उनका यह मत घोर संकीर्णता और साम्प्रदायिकता की ओर ही इंगित करने वाला है, जबकि सच्चा साहित्य इन सब से ऊपर होता है। परन्तु यदि उससे उनका अभिप्राय उच्चाशय, उदार, आस्तिक धार्मिक दृष्टिकोण से है, जो चरित्र-औदात्य और अखिल मानवता के लिए कल्याणकर है, तो उसे स्वीकार करने में कोई अड़चन नहीं।

भाषा की प्रौढ़ता के सम्बन्ध में भी उनका मत आपत्तिपूर्ण है। यदि इलियट का अभिप्राय ऐसी प्रौढ़ भाषा से होता जिसमें शक्ति का पूर्ण निखार झलकता हो, तो वह ग्राह्य हो सकता है, पर इलियट का अभिप्राय इतने से नहीं है। वह तो स्पष्ट कहते हैं कि महान क्लासिक कवि भाषा-विकास को सम्भावनाओं को निश्शेष कर देता है, उसके बाद उसके विकास की संभावना ही नहीं रहती। पर भाषा तो प्रकृति से ही विकासशील होती है। उसके विकास की पराकाष्ठा का अर्थ होगा उसकी गतिहीनता

Scanned by TapScanner

और भाषा तभी गतिहीन होगी जब उसके बोलने वालों का जीवन गतिहीन या मृतप्राय हो जाय। वस्तुतः भाषा सतत् विकासशील है, अतः उसकी प्रगति कभी रुक नहीं सकती। अतः इलियट की क्लासिक के सम्बन्ध में रखी यह शर्त कि उसकी भाषा प्रौढ़ हो, उस अर्थ में स्वीकार्य नहीं हो सकती जिस अर्थ में उन्होंने उसे रखा है, क्योंकि उस मत के अनुसार तो फिर क्लासिक तब तक रचना हो ही नहीं सकेगी जब तक कोई भाषा मृत न हो जाए।

कला की निर्वैयक्तिकता

एजरा पाउण्ड, जिसके विचारों से इलियट प्रभावित हुए थे, मानता था कि कवि वैज्ञानिक के समान ही निर्वैयक्तिक (impersonal) और वस्तुनिष्ठ होता है। उसका कार्य आत्म-निरपेक्ष होता है। इस मान्यता में निश्चय सर्वमान्य मान्यता का सार-तत्त्व विद्यमान है। इलियट अनेकता को एकता में बाँधने के लिए परम्परा को आवश्यक मानते थे, जो वैयक्तिकता का विरोधी है। वह साहित्य के जीवन्त विकास के लिए परम्परा का योग स्वीकार करते थे जिसके कारण साहित्य में आत्मनिष्ठ (Subjective) तत्त्व नियन्त्रण हो जाता है और वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रमुख हो जाता है।

इस 'परम्परा सिद्धांत' के द्वारा उन्होंने आत्मनिष्ठा साहित्य के स्थान पर वस्तु-निष्ठा साहित्य को महत्त्व प्रदान किया, कला को निर्वैयक्तिक घोषित किया और कवि को काव्य की स्वतन्त्र अवतारणा के लिए माध्यम मात्र स्वीकार किया। उसका कथन है – 'कवि व्यक्तिगत की अभिव्यक्ति नहीं करता है, वरन् वह विशिष्ट माध्यम मात्र है।

व्यक्तित्व भावों की अभिव्यक्ति कला नहीं है, वरन् उनसे पलायन कला है। कलाकार की प्रगति निरन्तर आत्म-त्याग, व्यक्तित्व का निरन्तर बहिष्कार है।' उनके प्रारम्भिक वक्तव्यों से स्पष्ट है कि कवि कविता लिखता नहीं, कविता स्वयं कवि के माध्यम से कागज पर शब्द-विधान के रूप में उतर आती है, अर्थात् कविता उत्पन्न हो जाती है, उत्पन्न की नहीं जाती। पर क्या उनके ये आरम्भिक विचार अन्त तक बने रहे। यीट्स के काव्य के सम्बन्ध में जो विचार उन्होंने प्रकट किए हैं और जो शिकायत की है कि उसके आरम्भिक काव्य में कवि का अपूर्व व्यक्तित्व नहीं मिलता, उससे लगता है कि बाद में चलकर इलियट के विचार तो बदल गये थे या जैसा कि स्वयं उन्होंने कहा, "मैं उस समय अपनी बात ठीक से व्यक्त न कर सका था।" बाद में निर्वैयक्तिकता के सम्बन्ध में उन्होंने निम्न वक्तव्य दिया जो उनकी बात को समझने में अधिक सहायता देता है।

"निर्वैयक्तिक के दो रूप होते हैं। एक वह जो 'कुशल शिल्पी मात्र' के लिए प्राकृतिक होती है दूसरा वह है जो प्रौढ़ कलाकार के द्वारा अधिकाधिक उपलब्ध किया जाता है। दूसरे प्रकार की निर्वैयक्तिकता उस प्रौढ़ कवि की होती है जो अपने उत्कट और व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से सामान्य सत्य को व्यक्त करने में समर्थ होता है।"

Scanned by TapScanner

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि भले ही उनके प्रारम्भिक मत की शब्दावली से लोगों को यह भ्रम हो गया हो कि वह कविता को कुशल-शिल्प-विधान मानते थे, परन्तु बाद में चलकर कला की निर्वैयक्तिकता से इलियट का अभिप्राय मात्र कुशल शिल्पी की निर्वैयक्तिकता से नहीं है। अब तो वह कला की निर्वैयक्तिकता को प्रौढ़ कवि के निजी अनुभवों की सामान्य अभिव्यक्ति मानते हैं। भारतीय आचार्यों की तरह वह भी यह मानते हैं कि कवि अपने निजी भावों की अभिव्यक्ति कविता में करता है, पर उसे इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वे भाव उसके अपने ही नहीं, सर्व-सामान्य के भाव बन जाते हैं। अर्थात् उनका साधारणीकरण हो जाता है। अतएव इलियट की निर्वैयक्तिकता का अर्थ है—कवि के व्यक्तिगत भावों की विशिष्टता का सामान्यीकरण। कवि अपनी तीव्र संवेदना और ग्रहण-क्षमता से अन्य लोगों की अनुभूतियों को आयत्त कर लेता है, पर वे आयत्त अनुभूतियाँ उसकी निजी अनुभूतियाँ हो जाती हैं। जब वह अपने इन स्वयुक्त अथवा चिन्तन द्वारा आयत्त अनुभवों को काव्य में व्यक्त करता है, तो वे उसके निजी अनुभव होते हुए भी सबके अनुभव बन जाते हैं। और यह मत सभी को ग्राह्य होना चाहिए। भारतीय काव्य-शास्त्र में साधारणीकरण-सिद्धान्त भी तो यही बात कहता है, वह भी कवि के निजी व्यक्तित्व को सामान्यीकृत रूप में काव्य के लिए ग्राह्य स्वीकार करता है।

इलियट कवि और कलाकृति दोनों को परस्पर प्रभावित होना स्वीकार करते हैं, "मैं विश्वास करता हूँ कि कवि अपने पात्रों को अपना कुछ अंश अवश्य प्रदान करता है, किन्तु मैं यह भी विश्वास करता हूँ कि वह अपने निर्मित पात्रों द्वारा स्वयं भी प्रभावित होता है।" इस परस्पर प्रभाव डालने का फल यह होता है कि सम्पूर्ण काव्य-कृति कवि के व्यक्तित्व से निर्मित हो उठती है। कवि ही अपने काव्य-जगत् में व्याप्त हो जाता हैं। वर्जिल के प्रसंग में भी उन्होंने कहा, "जब मैं वर्जिल का संसार कहता हूं तो मेरा आशय उस संसार से होता है जिसे उसने स्वयं निर्मित किया।" वह कवि को अपने संसार का स्वयं निर्माता मानता है। अतः यह कहना गलत होगा कि इलियट कविता में कवि के व्यक्तित्व को अस्वीकार करता है। उसकी यह मान्यता 'कविर्स्वयंभू' की भारतीय मान्यता से पूर्णतः मिलती-जुलती है।

कविता के तीन स्वर

'कविता के तीन स्वर' नामक अपने भाषण में इलियट ने काव्य के तीन स्वर माने हैं— प्रथम स्वर वह है जिसमें कवि अन्य किसी से नहीं, वरन् स्वयं से बात करता है; द्वितीय स्वर वह है जिसमें वह अन्यों (श्रोताओं) से बात करता है; और तृतीय स्वर में कवि स्वयं वक्ता न होकर पात्रों के माध्यम से बोलता है। प्रथम प्रकार के स्वर में कवि का लक्ष्य सम्प्रेषण अर्थात् दूसरों तक अपने भाव पहुँचाना नहीं होता। वह तो एक प्रकार के भार से व्यथित रहता है और अपनी बात कह उससे छुटकारा पाता है। इस प्रकार की कविता में आन्तरिक वस्तु अपना रूप स्वयं निर्मित करने में प्रवृत्त होती है। वस्तु और रूप का साथ-साथ विकास होता चलता है। इसी प्रकार

Scanned by TapScanner

की कविता के विषय में इलियट ने कहा था कि कविता स्वयं अवतरित हो जाती है लिखी नहीं जाती। ऐसी दशा में कवि केवल माध्यम होता है। हिन्दी की 'नई कविता' इसी प्रकार की है। दूसरे स्वर में कविता किसी सजग सामाजिक उद्देश्य के लिए लिखी जाती है। मनोरंजन या उपदेश के लिए लिखा गया साहित्य और व्यंग्य-काव्य इसी कोटि में आता है। महाकाव्य में भी वही स्वर प्रधान होता है। ऐसी कविताओं में कुछ अंश तक 'रूप' पूर्वनिर्धारित होता है। तीसरे स्वर के अन्तर्गत नाटक आते हैं। स्पष्ट है कि दूसरे और तीसरे स्वरों की कृतियों को इलियट कवि की अचेतावस्था से उद्भूत नहीं मानते। इनमें वह पूर्ण सजग होकर अपने व्यक्तित्व से कृति का निर्माण करता है, वह व्यक्तित्व से पलायन नहीं करता, वरन् व्यक्तित्व से निर्माण करता है।

वस्तुतः किसी भी कविता में केवल एक स्वर मिलना कठिन है। "यदि कवि ने निज से कभी कुछ नहीं कहा, तो उसकी कृति कविता नहीं होगी, शानदार वक्तृत्व भले ही हो। किन्तु यदि कवि ने नितान्त अपने लिए कविता लिखी है, तो वह एक व्यक्तिगत और अपरिचित भाषा में होगी; जो कविता केवल कवि के लिए होगी, वह कविता नहीं हो सकती।" इलियट के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि सामान्यतः कविता में उपरोक्त सभी प्रकार के तत्त्व विद्यमान रहते हैं।

वस्तुनिष्ठ समीकरण का सिद्धान्त

इलियट का कथन है, "कला में भाव प्रदर्शन का एक ही मार्ग है, और वह यह है कि उसके लिए वस्तुनिष्ठ समीकरण (objective correlative) को प्रस्तुत किया जाय। दूसरे शब्दों में, ऐसी वस्तु-संघटना, स्थिति, घटना-शृंखला प्रस्तुत की जाय जो उस नाटकीय भाव का सूत्र हो; ताकि ये बाह्य वस्तुएँ, जिनका पर्यवसान मूर्त मानस-अनुभव में हो जब प्रस्तुत की जायें तो तुरन्त भावोद्रेक हो जाय।" नाटककार जो कुछ कहना चाहता है, उसे वह वस्तुओं की किसी संघटना, किसी स्थिति, किसी घटना-शृंखला के द्वारा ही कहता है। चाहें तो हम इलियट के इस वस्तुनिष्ठ समीकरण को विभाव-विधान भी कह सकते हैं। यह विभाव-विधान ऐसा होना चाहिए कि सामाजिकों में नाटककार के मानस-भाव जाग्रत हो सकें।

काव्य-भाषा-सम्बन्धी विचार

कविता भाव-प्रधान होती है। प्रत्येक जाति और राष्ट्र की अनुभूतिशक्ति की निजी विशिष्टता होती है और उसी की भाषा में वह सम्पूर्णतः व्यक्त की जा सकती है। इलियट भी यही कहता है कि कविता अनूदित नहीं हो सकती, "*Poetry is constant reminder of all the things that can be sent only in one language and are understandable.*" ह्यूम ने कहा था कि युग के साथ-साथ कवि की अनुभूति में भी परिवर्तन होता रहता है, वस्तु को देखने के उसके दृष्टिकोण में अन्तर आता रहता है। अतः परम्परा बद्ध भाषा कवि की अनुभूति और उनके दृष्टिकोण को व्यक्त करने में समक्ष नहीं हो पाती है, कवि को परम्परागत भाषा का

Scanned by TapScanner

त्याग कर नई भाषा अपनानी पड़ती है। इलियट ने भी लगभग यही मत व्यक्त किया है। कविता समाज को नूतन अनुभूतियाँ प्रदान करती है, परिचित अनुभूतियों का नवीन बोध कराती है, और जिन अनुभूतियों को हम जानते हैं, किन्तु जिनकी अभिव्यक्ति के लिए हमें शब्द नहीं ज्ञात हैं, उन्हें अभिव्यंजना प्रदान करती है। इसके परिणामस्वरूप हमारी चेतना का विस्तार और संवेदन-शक्ति का परिष्कार होता है। इलियट मानता है कि कवि-कर्म भाषा के माध्यम से होता है। इसी माध्यम से वह समाज को नवीन संवेदन-शक्ति और भावानुभूतियाँ प्रदान करता है। इन नवीन अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए वह परम्परागत भाषा से संघर्ष करता है, उसे अपनी अभिव्यक्ति के अनुकूल बनाता है, उसे शक्ति प्रदान करता है। उत्तरदायित्वपूर्ण कवि का यह कर्त्तव्य है कि वह अभिव्यंजना का नवीन साधन स्वयं गढ़े और ऐसा वह न केवल अपने युग के लिए वरन् अपने में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन के लिए भी करे। जो बोधगम्य नहीं है, उसे बोधगम्य बनाने के लिए कवि को भाषा की शक्तियों का विकास करना होगा, शब्दों को अर्थ-समृद्ध बनाना होगा, इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए, इलियट के अनुसार, कवि को कविता लिखने का अभ्यास करते रहना चाहिए, निरन्तर शिल्प-प्रयोग करते रहना चाहिए। वह परामर्श देता है कि कवि के शब्दों में न तो अस्पष्टता हो और न अतिशयता। जहाँ तक हिन्दी-काव्य का प्रश्न है, नये कवियों ने इलियट की इस मान्यता के अनुसार चलने का प्रयत्न तो अवश्य किया है, पर सुबोधता की दृष्टियों से निरपेक्ष विवेचन करने पर यही कहना पड़ता है कि अभी तक उन्हें काम्य सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

कविता की भाषा के सम्बन्ध में इलियट का एक मत यह भी है, कि कवि की भाषा को युग की भाषा के इतने निकट सम्बन्ध में होना चाहिए कि श्रोता या पाठक उसे सुनकर या पढ़कर कह उठे कि "यदि मैं कविता में बात करना जानता, तो इसी प्रकार बात करता।" आज की हिन्दी-कविता की भाषा निश्चय ही इस शर्त को भी पूरा नहीं कर पा रही। वह मानता है कि आधुनिक युग में कविता गाने के लिए नहीं, बोलने के लिए लिखी जाती है, अतः उसका सम्बन्ध बोलचाल की भाषा से होना चाहिए। पर इतने से ही काम नहीं चलेगा, कवि का कर्त्तव्य है कि वह भाषा को द्रुत परिवर्तनों से भी बचाए। कविता में भाषा-प्रयोग यदि युग की बोल-चाल वाली भाषा के समान ही बनाये जाएँगे, तो कविता अपने महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से विरत रह जाएगी और उसकी यह मान्यता हिन्दी-कविता के संदर्भों में पूर्णतया चरितार्थ हो रही है।

समीक्षा और समीक्षक

इलियट के अनुसार निष्पक्ष समीक्षा दार्शनिक विवेचक या निष्पक्ष समीक्षक ही कर सकता है, कवि नहीं। कवि तो केवल अपनी कविता के सम्बन्ध में कुछ विचार व्यक्त कर सकता है। जिसका केवल सीमित मूल्य होता है। समीक्षक में विवेक होना आवश्यक है जिसकी उपलब्धि के लिए उसे जानना होगा कि "हम क्या हैं' और 'हमें

Scanned by TapScanner

क्या होना चाहिए,' 'हम क्या चाहते हैं' और 'हमें क्या चाहना चाहिए।' समीक्षक का कार्य बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण है, अतः उसमें इलियट ने सूक्ष्म और प्रचुर संवेदन-शक्ति की आवश्यकता स्वीकार की है। वह चाहते हैं कि वह मर्मज्ञ हो, साहित्य-मूल्यों से अवगत हो, उनका अध्ययन व्यापक और विवेक पूर्ण हो, वह स्वतन्त्र चेता हो, उसमें कोई आग्रह न हो। समीक्षक में साहित्य के अतिरिक्त अन्य विषयों में भी रुचि होनी चाहिए, उसे पूरा मानव होना चाहिए।

इलियट के अनुसार समीक्षा का मूलभूत कार्य है साहित्य का बोध कराना और उसका आनन्द बढ़ाना। साथ ही उसका कार्य यह भी बताना है कि आनन्द लेने योग्य क्या नहीं है। वह आनन्द लेने और बोध प्राप्त करने को अलग-अलग क्रियाएँ नहीं मानते। वह प्रथम को भावात्मक तथा दूसरी को बौद्धिक क्रिया नहीं मानते क्योंकि बोध से उनका तात्पर्य केवल व्याख्या नहीं है। वह कविता के बोध प्राप्त करने को उनका आनन्द लेना भी मानते हैं—

"To understand a poem comes to the same thing as to enjoy it for the right reason."

अब प्रश्न उठता है कि समीक्षक पाठक को काव्य का बोध प्राप्त करने और उसका सही आनन्द लेने में कसे सहायता कर सकता है। बोध-पक्ष पर बल देने से वह केवल व्याख्या में प्रवृत्त हो जायेगा।

काव्य के बोध-पक्ष से सम्बन्धित पहली प्रवृत्ति वह है जो कवि की जीवनी, उसके युग की विभिन्न प्रवृत्तियों, उसकी विभिन्न प्रेरणाओं की खोज करती है। यह एक प्रकार से काव्य का मनोवैज्ञानिक, जीवन-चरितात्मक, समाज-शास्त्रीय या वैज्ञानिक अध्ययन है। इलियट इस प्रकार की समीक्षा प्रवृत्ति की उपयोगिता तो स्वीकार करते हैं, पर साथ ही कहते हैं कि जहाँ उनकी आवश्यकता न हो, वहाँ यदि आवश्यकता से अधिक इस प्रकार के तथ्य एकत्र किए जायँ, तो हानि होगी और आज यह हानि चारों ओर हो रही है।

बोध-पक्ष से सम्बन्धित दूसरी प्रवृत्ति में काव्य-कृति को कवि या उसकी अन्य काव्य-कृतियों के सन्दर्भ के बिना समझने का प्रयत्न किया जाता है और ऐसा करते समय कविता के प्रत्येक अवयव, प्रत्येक पंक्ति का विश्लेषण करते हुए उसके अर्थ को निचोड़ने का प्रयत्न किया जाता है। यह पद्धति काव्य-रस की प्राप्ति में बाधक है क्योंकि इस निचोड़ने में कविता का सारा रस निकल जाता है।

ये दोनों पद्धतियाँ काव्य की वस्तुनिष्ठ समीक्षा के दो प्रकार हैं—एक में काव्योद्भव के मूलभूत कारणों की छान-बीन करने को प्राथमिकता दी जाती है अर्थात् वह कविता को, कवि के सम्बन्ध में जानकारी जुटाकर, समझने का प्रयत्न करती है। दूसरी में कृति का अध्ययन किया जाता है। इलियट इन दोनों को सीमा के भीतर उपयोगी मानते हैं और यह चाहते हैं कि साहित्यिक समीक्षक इन दोनों का उपयोग करे; किन्तु साहित्यिक समीक्षक इसलिए है कि वह अन्यों को साहित्य का बोध कराने

Scanned by TapScanner

और साहित्य के आनन्द की उपलब्धि कराने को अपना प्रमुख लक्ष्य मानता है। उसे चाहिए कि वह पाठक के सम्मुख कृति के अनुद्घाटित रूप को उद्घाटित कर दे, पाठक को वह सब कुछ बता दे जिसके सहारे वह कृति की आत्मा के सम्मुख खड़ा हो जाय। काव्य रस का आस्वादन करने का कार्य उसे पाठक पर ही छोड़ देना चाहिए। उसका कार्य तो कृति में व्यक्त देश-काल-व्यक्ति-निरपेक्ष, सामान्य मानवीय अनुभूति को पाठक की संवेदना-शक्ति के सम्मुख प्रस्तुत कर देना है। इस प्रकार इलियट ने वस्तु-निष्ठ और आत्मनिष्ठ दोनों प्रकार के काव्य-अध्ययनों को काव्यास्वादन के लिए अनिवार्य माना है।

साहित्य का मूल्य

आरम्भ में इलियट कविता के स्वतन्त्र अस्तित्व और उसकी वस्तुनिष्ठ प्रकृति के प्रबल आग्रही थे, और वैयिक्तकर्ता की अभिव्यक्ति या आत्मनिष्ठ कविता के विरोधी थे। आरम्भ में साहित्य के नैतिक मूल्यों के निरूपण की ओर उनका ध्यान प्रायः नहीं था, किन्तु धीरे-धीरे इधर भी उनका ध्यान गया। यद्यपि वह साहित्यिक कृति में साहित्यक मूल्य को अनिवार्य मानते हैं पर जब यह निश्चित हो जाए कि अमुक कृति साहित्यिक है, यह निश्चित करना भी आवश्यक है कि उसका नैतिक मूल्य क्या है। इसी नैतिक कसौटी पर साहित्य की महानता निर्धारित होगी क्योंकि भले ही कवि जान-बूझ कर पाठक को प्रभावित न करना चाहे, पर उसकी कृति पाठकों पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। इलियट उन लोगों को गलत मानता है जो साहित्य को केवल साहित्य मानकर पढ़ते और आनन्द लेना चाहते हैं। वह यह स्वयं अनुभव करते थे कि डी० एच० लारेन्स के साहित्य का उन पर बुरा प्रभाव पड़ा था, अतः वह साहित्य के नैतिक मूल्यों की ओर से उदासीन न थे। इससे स्पष्ट है कि उद्देश्य की दृष्टियों से इलियट आनन्द और नीति—इन दोनों बातों के भारतीय आचार्यों के समान ही समर्थक हैं।

धर्म और साहित्य के सम्बन्ध की विवेचना में इलियट ने कहा है कि यह सम्बन्ध कितने ही प्रकार का हो सकता है। धार्मिक साहित्य में वह धार्मिक ग्रंथों की राशि को मानते हैं। इसमें काव्यत्व हो सकता है और होता भी है पर उसे काव्यत्व के लिए नहीं पढ़ा जाता। दूसरा भक्तिमूलक साहित्य हो सकता है, पर इलियट इसे भी अधिक महत्त्व नहीं देते क्योंकि इसमें जीवन के अधिकांश रूपों को छोड़ दिया जाता है। तीसरे वर्ग में वे कृतियाँ आएँगी जो धर्म को काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं। उनकी दृष्टि में यह काव्य प्रचार-काव्य होगा, अतः वह उच्च कोटि का साहित्य नहीं हो सकता। पर यदि ऐसी 'धार्मिक प्रबुद्धता' (religious awareness) बिना प्रयास के किसी कृति में व्याप्त हो, तो वह उच्च कोटि का होगा। इसमें धर्म और साहित्य का वांछित सम्बन्ध होगा। अतः यह आवश्यक नहीं कि कवि अपनी कृति में नीति या धर्म का उपदेश दे, वैसा करना तो असाहित्यिक होगा। आवश्यक यह कि उसकी

Scanned by TapScanner

धार्मिक प्रबुद्धता उसकी कृति में स्वतः स्फुरित रहे । जो साहित्य हमें जीने की कला सिखाए, वह महान् होगा, पर यह ज्ञान सजग प्रयत्न द्वारा न होकर अप्रत्यक्ष रीति से दिया जाना चाहिए और आनन्द उसका लक्ष्य होना चाहिए ।

ऊपर के विरेचन से स्पष्ट है कि इलियट बीसवीं शताब्दी के समर्थ समीक्षक थे । उनके अधिकांश मत भारतीय काव्य-शास्त्रीय मतों, विशेषतः रस-सिद्धान्त से मेल खाते हैं । आरम्भ में उनके द्वारा व्यक्त मतों में भ्रान्ति हो सकती है, पर बाद में ज्यों-ज्यों उनका चिन्तन बढ़ता गया, इन्होंने अपने पूर्व-मतों को सुधारा और स्वस्थ नवीन मतों की स्थापना की । इसी कारण नव-बोधपूर्ण विधात्मक साहित्य पर आज इलियट का प्रभाव सर्वाधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । हिन्दी का विधात्मक साहित्य भी इसका अपवाद नहीं कहा जा सकता ।

Scanned by TapScanner